



## नयवाद : विभिन्न दर्शनों के समन्वय की अपूर्व कला

☆ श्रीचन्द चौरडिया, न्यायतीर्थ (द्वय)

सम्पूर्ण पदार्थ सामान्य-विशेषरूप से ही अनुभव में आते हैं। अतः अनेकान्तवाद में ही वस्तु का अर्थक्रियाकारित्व लक्षण सम्यग्प्रकार से घटित हो सकता है। सामान्य और विशेष परस्पर सापेक्ष हैं। बिना सामान्य के विशेष और विशेष के बिना सामान्य कहीं पर भी नहीं ठहर सकते। अतः विशेष निरपेक्ष सामान्य को अथवा सामान्य निरपेक्ष विशेष को तत्त्व मानना केवल प्रलाप मात्र है। जिस प्रकार जन्मान्ध मनुष्य हाथी का स्वरूप जानने की इच्छा से हाथी के भिन्न-भिन्न अवयवों को टटोलकर हाथी के केवल कान, सूँड़, पैर आदि को ही हाथी समझ बैठते हैं उसी प्रकार एकान्तवादी वस्तु के सिर्फ एकांश को जानकर उस वस्तु के सिर्फ एक अंश रूप ज्ञान को ही वस्तु का सर्वांशात्मक ज्ञान समझने लगते हैं। सम्पूर्णनय स्वरूप स्याद्वाद के बिना किसी भी वस्तु का सम्यग् प्रकार से प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण वादी पद-पद पर नयवाद का आश्रय लेकर ही पदार्थों का प्रतिपादन कर सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अनन्त स्वभाव अथवा धर्म है।

**नयवाद : परिभाषा, अर्थ**

जिसके द्वारा पदार्थों के एक अंश का ज्ञान हो, उसे नय कहते हैं। खोटे नयों को दुर्नय कहते हैं। किसी वस्तु में अन्य धर्मों का निषेध करके अपने अभीष्ट एकान्त अस्तित्व को सिद्ध करने को दुर्नय कहते हैं।<sup>१</sup> जैसे—यह घट ही है। वस्तु में अभीष्ट धर्म की प्रधानता से अन्य धर्मों का निषेध करने के कारण दुर्नय को मिथ्यानय कहा गया है। इसके विपरीत किसी वस्तु में अपने इष्टधर्म को सिद्ध करते हुए अन्य धर्मों में उदासीन होकर वस्तु के विवेचन करने को नय (सुनय) कहते हैं। जैसे—यह घट है। नय में दुर्नय की तरह एक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का निषेध नहीं किया जा सकता, इसलिए नय को दुर्नय नहीं कहा जा सकता। प्रमाण सर्वाधिग्राही है तथा नय विकला देशग्राही है। नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया जा सकता है।

विशेषावश्यकभाष्य में जिनभद्र क्षमाश्रमण ने नयों को प्रमाण के समान कहा है। उपक्रम, अनुगम, नय, निक्षेप—ये चार अनुयोग महानगर में पहुँचने के दरवाजे हैं। प्रमाण से निश्चित किये हुए पदार्थों के एक अंश के ज्ञान को नय कहते हैं। वस्तुओं में अनन्तधर्म होते हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों में से वक्ता के अभिप्राय के अनुसार एक धर्म के कथन करने को नय कहते हैं। घट में कच्चापन, पक्कापन, मोटापन, चौड़ापन आदि अनन्तधर्म होते हैं अतः नाना नयों की अपेक्षा से शब्द और अर्थ की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म विद्यमान हैं। नय का उद्देश्य है माध्यस्थ बड़े।

प्रमाण, इन्द्रिय और मन—सबसे हो सकता है किन्तु नय सिर्फ मन से होता है क्योंकि अंशों का ग्रहण मानसिक अभिप्राय से हो सकता है। जब हम अंशों की कल्पना करने लग जाते हैं तब वह ज्ञान नय कहलाता है। नयज्ञान में वस्तु के अन्य अंश या गुणों की ओर उपेक्षा या गौणता रहती है परन्तु खण्डन नहीं होता।<sup>२</sup> जो ज्ञान शब्दों में उतारा जा सके, जिसमें वस्तु को उद्देश्य और

१ भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसन्धयः।

ये ते उपेक्षानपेक्षाम्यां लक्ष्यन्ते नयदुर्नयाः ॥

२ सापेक्षाः परस्परसंबद्धास्ते नयाः



विषेय रूप में कहा जा सके, उसे नय कहते हैं। अपनी विवक्षा से किसी एक अंश को मुख्य मान कर व्यवहार करना नय है। जैसे दीप में नित्य धर्म भी रहता है और अनित्य धर्म भी। यहाँ अनित्यत्व का निषेध न करते हुए अपेक्षावशात् दीपक को नित्य कहना नय है। प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार में कहा है—

**नीयते येन श्रुताख्य प्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशोदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभि-  
प्रायविशेषो नयः ।**

अर्थात् जिसके द्वारा—श्रुत प्रमाण के द्वारा विषय किये हुए पदार्थ का एक अंश सोचा जाय—ऐसे वक्ता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं। नयों के निरूपण का अर्थ है—विचारों का वर्गीकरण। नयवाद अर्थात् विचारों की मीमांसा। इस वाद में विचारों के कारण, परिणाम या विषयों की पर्यालोचना मात्र नहीं है। व्यवहार में परस्पर विरुद्ध दीखने वाले, किन्तु यथार्थ में अविरोधी विचारों के मूल कारणों की खोज करना ही इसका मूल उद्देश्य है। इसलिए नयवाद की संक्षिप्त परिभाषा है—परस्पर विरुद्ध दीखने वाले विचारों के मूल कारणों की खोजपूर्वक उन सब में समन्वय करने वाला शास्त्र।<sup>१</sup>

नय के ज्ञाननय और क्रियानय—ये दो विचार भी हो सकते हैं। विचार सारणियों से पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को जानना ज्ञाननय है और उसे अपने जीवन में उतरना क्रियानय। केवल संकेत मात्र से अर्थ का ज्ञान नहीं होता क्योंकि शब्दों में ही सब अर्थों को जानने की शक्ति होती है।

**नयवाद : परिभाषा—अर्थ की व्याख्या**

शाब्दिक, आर्थिक, वास्तविक, व्यावहारिक, द्रव्याधिक और पर्यायाधिक के अभिप्राय से आचार्यों ने नय के मूलतः सात भेद किये हैं—यथा-नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुद्ध और एवंभूत। बौद्ध कहते हैं—रूप आदि अवस्था ही वस्तुद्रव्य है। वेदान्त का कहना है कि द्रव्य ही वस्तु है, रूपादि गुण तात्त्विक नहीं हैं। भेद और अभेद का द्वन्द्व का एक निदर्शन है। नय-वाद अभेद-भेद इन दो वस्तुओं पर टिका हुआ है।<sup>२</sup> शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा द्रव्याधिक नय समस्त पदार्थों को केवल द्रव्य रूप जानता है क्योंकि द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं है, जैसे—आत्मा, घट आदि। सभी पदार्थ द्रव्याधिक नय की अपेक्षा नित्य हैं। प्रदीप, घटादि सर्वथा अनित्य हैं, आकाश सर्वथा नित्य है—यह मानना दुर्नयवाद को स्वीकार करना है। वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होने पर भी सब धर्मों का तिरस्कार करके केवल अपने अभीष्ट नित्यत्वादि धर्मों का समर्थन करना 'दुर्नय' है। वस्तुतः कोई भी पदार्थ सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य नहीं कहा जा सकता। जो अनित्य है वह कथंचित् नित्य है और जो नित्य है वह कथंचित् अनित्य है। वैशेषिक-दर्शन में भी कहीं-कहीं पदार्थ में नित्य-अनित्य दो तरह के धर्मों की व्यवस्था उपलब्ध होती है जैसा कि प्रशस्तिकार ने प्रशस्तपादभाष्य में कहा है—

**सा तु द्विविधा नित्या अनित्या च ।**

**परमाणुलक्षणा नित्या कार्यलक्षणा अनित्या ।**

१ अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः ।

अनेकान्तः प्रमाणस्ते तदेकान्तोऽपितान्नायात् ॥

—स्वयम्भू० १०३

२ सामान्य प्रतिभासो ह्यनुगताकारो विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते ।

—प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, चतुर्थ खण्ड



अर्थात् पृथ्वी नित्य और अनित्य—दो प्रकार की है। परमाणुरूप पृथ्वी नित्य और कार्यरूप पृथ्वी अनित्य है। वैशेषिक लोग भी एक अवयवी को ही चित्ररूप (परस्पर विरुद्ध रूप) तथा एक ही पट को चल और अचल, रूप और अरूप, आवृत्त, और अनावृत्त आदि विरुद्ध धर्म युक्त स्वीकार करते हैं। बौद्ध लोग भी एक ही चित्रपट में नील-अनील दो विरुद्ध धर्मों को मानते हैं। एक ही पुरुष को अपने पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्रों की अपेक्षा पिता कहा जाता है उसी प्रकार एक ही अनुभूति भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से अनुभूति और अनुभाव्य कही जाती है।

संक्षेपतः द्रव्याधिक और पर्यायाधिक भेद से नय के दो भेद हैं। द्रव्याधिकनय के नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीन भेद होते हैं। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—ये चार पर्यायाधिकनय के भेद हैं। श्री सिद्धसेन आदि तार्किकों के मत को मानने वाले द्रव्याधिक नय के तीन भेद मानते हैं, परन्तु जिनभद्रगणि के मत का अनुसरण करने वाले सैद्धान्तिक द्रव्याधिकनय के चार भेद मानते हैं। जो पर्यायों को गौण मानकर द्रव्य को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे द्रव्याधिकनय कहते हैं। जो द्रव्य को गौण मानकर पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे पर्यायाधिक नय कहते हैं अर्थात् द्रव्य अर्थात् सामान्य को विषय करने वाले नय को द्रव्याधिकनय कहते हैं और पर्याय अर्थात् विशेष को विषय करने वाले नय को पर्यायाधिकनय कहते हैं।

नय और प्रमाण से होने वाले जीवादि तत्त्वों के यथार्थज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। न्यायशास्त्र में जिस ज्ञान का विषय सत्य है उसे सम्यग्ज्ञान और जिसका विषय असत्य है उसे मिथ्याज्ञान कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्र में यह विभाग गौण है। यहाँ सम्यग्ज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का विकास हो और मिथ्याज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का पतन हो या संसार की वृद्धि हो। अस्तु, किसी विषय के सापेक्ष निरूपण को नय कहते हैं। किसी एक या अनेक वस्तुओं के विषय में अलग-अलग मनुष्यों के या एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न विचार होते हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो वे विचार अपरिमित हैं। इन सबका विचार प्रत्येक को लेकर करना असम्भव है। अपने प्रयोजन के अनुसार अतिविस्तार और अतिसंक्षेप—दोनों को छोड़कर किसी विषय का मध्यम दृष्टि से प्रतिपादन करना ही नय है।

सामान्यतः मनुष्य की ज्ञानवृत्ति अधूरी होती है और अस्मिता अभिनिवेश अर्थात् अहंकार या अपने को ठीक मानने की भावना बहुत अधिक होती है। इससे जब वह किसी विषय में किसी प्रकार का विचार करता है तो उसी विचार को अन्तिम, सम्पूर्ण तथा सत्य मान लेता है। इस भावना से वह दूसरों के विचारों को समझने के धैर्य को खो बैठता है। अन्त में अपने अल्प तथा आंशिक ज्ञान को सम्पूर्ण मान लेता है। इस प्रकार की धारणाओं के कारण ही सत्य होने पर भी मान्यताओं में परस्पर विवाद हो जाता है और पूर्ण और सत्य ज्ञान का द्वार बंद हो जाता है।

एक दर्शन आत्मा आदि के विषय में अपने माने हुए किसी पुरुष के एकदेशीय विचार को सम्पूर्ण सत्य मान लेता है। उस विषय में उसका विरोध करने वाले सत्य विचार को भी असत्य समझता है। इसी प्रकार दूसरा दर्शन पहले को और दोनों मिलकर तीसरे को झूठा समझते हैं। फलस्वरूप समता की जगह विषमता और विवाद खड़े हो जाते हैं अतः सत्य और पूर्ण ज्ञान का द्वार खोलने के लिए तथा विवाद दूर करने के लिए नयवाद की स्थापना की गई है और उसके द्वारा यह बताया गया है कि प्रत्येक विचारक अपने विचार को आप्त-वाक्य कहने के पहले यह तो सोचे





कि उसका विचार प्रमाण की गिनती में आने लायक सर्वांशी है भी या नहीं। इस प्रकार की सूचना करना ही जैनदर्शन की नयवादरूप विशेषता है।

**नयवाद—भेद-उपभेद**

यद्यपि नैगम, संग्रहादि के भेद से नयों के भेद प्रसिद्ध हैं तथापि नयों को प्रस्थक के दृष्टान्त से, वसति के दृष्टान्त से और प्रदेश के दृष्टान्त से समझाया गया है। आगम में कहा है—

से किं तं नयप्रमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—पत्थगदिट्ठेणं वसहिदिट्ठेणं पएस-दिट्ठेणं ।  
—अणुओगद्वाराइं सुत्तं ४७३

अर्थात् नयप्रमाण तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, यथा—प्रस्थक के दृष्टान्त से, वसति के दृष्टान्त से और प्रदेश के दृष्टान्त से।

जिन नयों को प्रस्थक के दृष्टान्त से सिद्ध किया जाय उसे प्रस्थक दृष्टान्त जानना चाहिए। जैसे—कोई व्यक्ति परशु हाथ में लेकर वन में जा रहा था। उसको देखकर किसी ने पूछा कि आप कहाँ जाते हैं। प्रत्युत्तर में उसने कहा कि 'प्रस्थक के लिए जाता हूँ।' उसका ऐसा कहना अविशुद्ध नैगमनय की अपेक्षा से है क्योंकि अभी तो उसके विचार विशेष ही उत्पन्न हुए हैं।<sup>१</sup> तदनन्तर किसी ने उसको काष्ठ छीलते हुए देखकर पूछा कि आप क्या छीलते हैं? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि प्रस्थक को छीलता हूँ। यह विशुद्ध नैगम नय का वचन है। इसी प्रकार काष्ठ को तक्षण करते हुए, उत्कीरन करते हुए, लेखन करते हुए को देखकर जब किसी ने पूछा। प्रत्युत्तर में उसने कहा कि प्रस्थक को तक्षण करता हूँ, उत्कीरन करता हूँ, लेखन करता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। क्योंकि विशुद्धतर नैगमनय के मत से जब प्रस्थक नामांकित हो गया तभी पूर्ण प्रस्थक माना जाता है। अर्थात् प्रथम के नैगमनय से दूसरा कथन इसी प्रकार विशुद्धतर होता हुआ नामांकित प्रस्थक (धान्यमान विशेषार्थ काष्ठमय भाजन) निष्पन्न हो जाता है। क्योंकि जब प्रस्थक का नाम स्थापन कर लिया गया तभी विशुद्धतर नैगमनय से परिपूर्ण रूप प्रस्थक होता है।

संग्रहनय के मत से सब वस्तु सामान्य रूप है, इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो तभी उसको प्रस्थक कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो घट-पटादि वस्तुएँ भी प्रस्थक सञ्ज्ञक हो जायेंगी। इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो और अपना कार्य करता हो तभी वह प्रस्थक कहा जाता है।<sup>२</sup>

इसी प्रकार व्यवहारनय की मान्यता है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान काल को ही मानता है, भूत और भविष्यत् को नहीं। इसलिए व्यवहार-पक्ष में नामरूप प्रस्थक को भी प्रस्थक और उसमें भरे हुए धान्य को भी प्रस्थक कहा जाता है।<sup>३</sup>

शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—इन तीनों नयों को शब्दनय कहते हैं क्योंकि वे शब्द के अनुकूल अर्थ मानते हैं। आद्य के चार नय अर्थ का प्राधान्य मानते हैं।<sup>४</sup> इसलिए शब्दनयों के

१ से जहा नामए केइ पुरिसे परसुं गहायअडविहुत्ते गच्छेज्जा, तं च केइ पासित्ता वदेज्जा-कथं भव गच्छसि ? अविबुद्धो नेगमो भणति पत्थगस्स गच्छामि ।  
—अणुओगद्वाराइं ४७४

२ संग्गहस्स भिउमेज्जसमारूढो पत्थओ ।  
—अणुओगद्वाराइं, सूत्र ४७४

३ अज्जुसुयस्स पत्थओऽवि पत्थओ मेज्जंवि पत्थओ ।  
—अणुओगद्वाराइं, सूत्र ४७४

४ तिण्ह सद्हनयाणं पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेणं पत्थओ निपफज्जइ ।  
—अणुओगद्वाराइं, सूत्र ४७४



मत से जो प्रस्थक के अर्थ का ज्ञाता। हो—वही प्रस्थक है, क्योंकि उपयोग से जो प्रस्थक की निष्पत्ति है वास्तव में वही प्रस्थक है, अन्य नहीं और बिना उपयोग के प्रस्थक हो ही नहीं सकता। इसलिए ये तीनों भावनाय है। भाव प्रधान नयों में उपयोग ही मुख्य लक्षण है—और उपयोग के बिना प्रस्थक की उत्पत्ति नहीं होती। अतः उपयोग को ही 'प्रस्थक' कहा जाता है।

वसति के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—जैसे—कोई नामधारी पुरुष किसी पुरुष को कहे कि आप कहाँ पर रहते हो? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि लोक में रहता हूँ—यह अविशुद्ध नैगमनय का कथन है।<sup>१</sup> लोक तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है—यथा—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, तो क्या आप तीनों लोकों में बसते हैं? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं तिर्यक् लोक में ही बसता हूँ—यह विशुद्ध नैगमनय का वचन है। तिर्यक् लोक में जम्बू द्वीप से स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्येय द्वीप समुद्र हैं, तो क्या आप उन सभी में रहते हो? प्रत्युत्तर में उसने कहा कि मैं जम्बूद्वीप में बसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र आदि दस क्षेत्र हैं, तो क्या आप उन सभी में बसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि भरतक्षेत्र में रहता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। भरतक्षेत्र के भी दो खण्ड हैं—दक्षिणाङ्ग भरतक्षेत्र तथा उत्तराङ्ग भरतक्षेत्र? तो आप उन सभी में रहते हो? प्रत्युत्तर में कहा है कि मैं दक्षिणाङ्ग भरतक्षेत्र में वास करता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है।

दक्षिणाङ्ग भरतक्षेत्र में भी अनेक ग्राम, खान, नगर, खेड़, शहर, मंडप, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश आदि स्थान हैं तो क्या आप उन सभी में निवास करते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं पाटलिपुत्र (पटना) में बसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। पाटलिपुत्र में भी अनेक घर हैं, तो क्या आप उन सभी में बसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं देवदत्त के घर में बसता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। देवदत्त के घर में अनेक कोठे-कमरे हैं, तो क्या आप उन सभी में बसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं देवदत्त के गर्भ घर में बसता हूँ।

इस प्रकार पूर्वपूर्वपिक्षया विशुद्धतर नैगमनय के मत से बसते हुए को बसता हुआ माना जाता है। यदि वह अन्यत्र स्थान को चला गया हो तब भी जहाँ निवास करेगा वहीं उसको बसता हुआ माना जायेगा।

इसी प्रकार व्यवहारनय का मन्तव्य है। क्योंकि जहाँ पर जिसका निवासस्थान है वह उसी स्थान में बसता हुआ माना जाता है तथा जहाँ पर रहे, वही निवासस्थान उसका होता है। जैसे कि पाटलिपुत्र का रहने वाला यदि कारणवशात् कहीं पर चला जाय तब वहाँ पर ऐसा कहा जाता है कि अमुक पुरुष पाटलिपुत्र का रहने वाला यहाँ पर आया हुआ है। तथा पाटलिपुत्र में ऐसा कहते हैं—“अब वह यहाँ पर नहीं है अन्यत्र चला गया है।” भावार्थ यह है कि विशुद्धतर नैगमनय और व्यवहारनय के मत से 'बसते हुए को बसता हुआ' मानते हैं।

संग्रहनय से जब कोई स्वशय्या में शयन करे तभी बसता हुआ माना जाता है क्योंकि चलनादि क्रिया से रहित होकर शयन करने के समय को ही संग्रहनय बसता हुआ मानता है। यह सामान्यवादी है? इसलिए इसके मत से सभी शय्याएँ एक समान हैं। चाहे वे फिर कहीं पर ही क्यों न हों।

१ से जहा नामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं वदिज्जा, कहि भवं वससि ? तत्थ अविशुद्धो णेमो—  
लोगे वसामि ।  
—अणुओगहारइं, सूत्र ४७५



ऋजुसूत्रनय के मत से आकाश के जिन प्रदेशों में अवकाश किया हो अर्थात् संस्तारक में जितने आकाश प्रदेश उसने अवगाहन किये हों, उनमें ही बसता हुआ माना जाता है।

शब्द, समभिरूढ और एवंबूतनय—तीनों नयों का ऐसा मन्तव्य है कि जो-जो पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वरूप में ही बसते हैं। अर्थात् तीनों शब्दनयों के अभिप्राय से पदार्थ आत्म-भाव में रहता हुआ माना जाता है।

प्रदेश के दृष्टान्त से सप्त नयों का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिए—

नैगमनय कहता है कि छह प्रकार के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश, स्कन्ध का प्रदेश और देश का प्रदेश।<sup>१</sup> इस प्रकार नैगमनय के वचन को सुनकर संग्रहनय ने कहा कि तुम छह के प्रदेश कहते हो—यह उचित नहीं है क्योंकि जो देश का प्रदेश है वह उसी के द्रव्य का है उदाहरणतः—मेरे नौकर ने गधा खरीदा है। दास भी मेरा ही है और गधा भी मेरा ही है। इसलिए ऐसे मत कहे कि छहों के प्रदेश हैं, ऐसा कहे कि पाँचों के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

संग्रहनय के वचन को सुनकर व्यवहारनय ने कहा कि तुमने पाँचों प्रदेश प्रतिपादन किये हैं, वे भी उचित नहीं हैं। जैसे—पाँच गोष्ठिक पुरुषों की किञ्चित् द्रव्य जाति सामान्य होती है, हिरण्य, सुवर्ण, धन अथवा धान्य साधारण साक्षी हों—उसी प्रकार पाँचों प्रदेश साधारण हों तब तो आपका कथन युक्तिसंगत है, लेकिन वे पृथक्-पृथक् प्रदेश हैं अतः आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है। लेकिन ऐसा प्रतिपादन करो कि प्रदेश पाँच प्रकार का है—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

व्यवहारनय के वचन को सुनकर ऋजुसूत्रनय ने कहा कि तुम्हारा प्रतिपादन सम्यग् नहीं है क्योंकि एक-एक द्रव्य के पाँच-पाँच प्रदेश मानने से २५ हो जाते हैं इसलिए यह कथन सिद्धान्त बाधित है। इसलिए ऐसा न कहना चाहिए किन्तु मध्य में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश यावत् स्यात् स्कन्ध प्रदेश। क्योंकि जिसकी वर्तमान में अस्ति है उसी की अस्ति है, जिसकी नास्ति है उसी की नास्ति है। जो पदार्थ है वह अपने गुण में सदैव काल में विद्यमान है क्योंकि पाँचों द्रव्य साधारण नहीं हैं इसलिए स्यात् शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

ऋजुसूत्रनय के कथन को सुनकर शब्दनय ने कहा कि यदि स्यात् शब्द का ही सर्वथा प्रयोग किया जायेगा तो अनवस्था आदि दोष की प्राप्ति हो जायेगी। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश, स्यात् अधर्म प्रदेश इत्यादि। जैसे देवदत्त राजा का भी भृत्य है और वही अमात्य का भी है। इसी प्रकार आकाशादि प्रदेश भी जानना चाहिए। इसलिए ऐसा कथन युक्तिसंगत नहीं है, किन्तु ऐसा कहना चाहिए कि जो धर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही धर्मात्मक है। इसी प्रकार जो अधर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही अधर्मात्मक है।<sup>२</sup>

शब्दनय के कथन को सुनकर समभिरूढनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत

१ जेगमो भणति छण्हं पदेसो, तं जहा—धम्मपदेसो जाव देसपदेसो—

—अणुओगद्वाराइं, सूत्र ४७६

२ अणुओगद्वाराइं, सूत्र ४७६



: ४७१ : नयवाद : विभिन्न दर्शनों के समन्वय की....

श्री जैन दिवाकर - स्मृति-ग्रन्थ

नहीं है। यह वाक्य दो समास का है—तत्पुरुष और कर्मधारय “धम्मे पएसे—से पएसे धम्मे”। यदि तत्पुरुष के द्वारा कहता है तो ऐसा नहीं कहना चाहिए अथवा कर्मधारय से कहता है तो विशेष रूप से कथन करना चाहिए। जैसे कि—धर्म और उसका जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है, इसी प्रकार अधर्म और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मात्मक है।

समभिरूढनय के वचन को सुनकर सम्प्रति एवंभूतनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। धर्मास्तिकाय आदि पदार्थों का स्वरूप देश, प्रदेश की कल्पना से रहित तथा प्रतिपूर्ण—आत्मस्वरूप से अविकल और अवयव रहित एक नाम से ग्रहण किया गया है। कहा है—  
देसेऽवि से अवत्यू पएसेऽवि से अवत्यू ।

—अणुओगहाराइं, सूत्र ४७६

अर्थात् एवंभूतनय की अपेक्षा देश भी अवस्तु है, प्रदेश भी अवस्तु है। भेद नहीं है। एक अखण्ड वस्तु ही ग्राह्य हो सकती है।

अपेक्षाभेद से नैगमादि नयों का आगमों में विवेचन है। ये सातों नय अपना-अपना मत निरपेक्षता से वर्णन करते हुए दुर्नय हो जाते हैं। ‘सौगतादि समयवत्’ और परस्पर सापेक्ष होते हुए सन्नय हो जाते हैं। इन सात नयों का जो परस्पर सापेक्ष कथन है वही सम्पूर्ण जैनमत है। क्योंकि जैनमत अनेक नयात्मक है, एक नयात्मक नहीं। स्याद्वादमंजरी<sup>१</sup> में कहा है कि हे नाथ ! जैसे सब नदियाँ समुद्र में इकट्ठी हो जाती हैं उसी प्रकार आपके मत में सब नय एक साथ हो जाते हैं। किन्तु आपका मत किसी भी नय में समावेश नहीं हो सकता। जैसे कि समुद्र में नदी में नहीं समाविष्ट होता इसी प्रकार सभी वादियों का सिद्धान्त तो जैनमत है लेकिन सम्पूर्ण जैनमत किसी वादी के मत में नहीं है।

नयवाद की सिद्धान्तिकता और व्यावहारिकता

तत्त्वतः सभी पदार्थ सामान्य-विशेषरूप हैं। परन्तु अल्पज्ञानी धर्म, अधर्म, आकाश—काल, इन अपौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को सम्यग् प्रकार से नहीं समझ सकते, शब्दादि पौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। केवल नैगमनय का अनुकरण करने वाले न्याय-वैशेषिक परस्पर भिन्न और निरपेक्ष सामान्य और विशेष दोनों को स्वीकार करते हैं। नैगमनय के अनुसार अभिन्न ज्ञान का कारण सामान्यधर्म विशेषधर्म से भिन्न है। दो धर्म अथवा दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी में प्रधान और गौणता की विविक्षाओं को ‘नैगम’ अथवा नैगमनय कहते हैं। परन्तु दो धर्म, दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी में सर्वथा भिन्नता दिखाने को ‘नैगमाभास’ कहते हैं। निगम शब्द का अर्थ है—देश-संकल्प और उपचार। इनमें होने वाले अभिप्राय को नैगमनय कहते हैं।<sup>२</sup> अर्थात् इसमें तादात्म्य की अपेक्षा से ही सामान्य विशेष की भिन्नता का समर्थन किया जाता है।

वेदांती और सांख्य केवल संग्रहनय को मानते हैं। विशेषरहित सामान्यमात्र जानने वाले को संग्रहनय कहते हैं। संग्रहनय एक शब्द के द्वारा अनेक पदार्थों को ग्रहण करता है अथवा एक अंश या अवयव का नाम लेने से सर्वगुणपर्याय सहित वस्तु को ग्रहण करने वाला संग्रहनय है।

यद्यपि संग्रहनय की अपेक्षा द्रव्य और पर्याय सत् से अभिन्न हैं—परन्तु व्यवहारनय की

१ उदधाचिव सर्वसिन्धवः, समुदीर्णास्त्वयिनाथ दृष्टयः ।

न च तामु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ॥

२ निगमः देशसंकल्पः उपचारो वा तत्र भवो नैगमः ।

—स्याद्वादमंजरी

—जैन सिद्धान्त दीपिका ६।१६



अपेक्षा द्रव्य और पर्याय को सत् से भिन्न माना गया है, द्रव्य और पर्याय के एकांत भेद प्रतिपादन को व्यवहाराभास कहते हैं, जैसे चार्वाक दर्शन। चार्वाक लोग द्रव्य के पर्यायादि को न मानकर केवल भूतचतुष्टय को मानते हैं अतः उन्हें व्यवहार भास कहा गया है। यह व्यवहारनय उपचार-बहुल और लौकिक दृष्टि को लेकर चलता है।

बौद्ध लोग क्षण-क्षण में नाश होने वाली पर्यायों को ही वास्तविक मानकर पर्यायों के आश्रित द्रव्यों का निषेध करते हैं, इसलिए उनका मत ऋजुसूत्रनयाभास है। वस्तु के सर्वथा निषेध करने को ऋजुसूत्रनयाभास कहते हैं। वर्तमान क्षण की पर्याय मात्र की प्रधानता से वस्तु का कथन करना ऋजुसूत्रनय है—जैसे—इस समय मैं सुख की पर्याय भोगता हूँ।

परस्पर विरोधी लिंग, संख्यादि के भेद से वस्तु में भेद मानने को शब्दनय कहते हैं। वैयाकरण लोग शब्दनय आदि का अनुकरण करते हैं। कालादि के भेद से शब्द और अर्थ को सर्वदा अलग मानने को शब्दनयाभास कहते हैं। रूढ़ि से संपूर्ण शब्दों के एक अर्थ में प्रयुक्त होने को 'शब्दनय' कहते हैं।

समभिरूढनय पर्यायवाची शब्दों में भिन्न अर्थ को द्योतित करता है। भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति होने से पर्यायवाची शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। पर्यायवाची शब्दों को सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढनयाभास कहते हैं।

जिस समय व्युत्पत्ति के निमित्त रूप अर्थ का व्यवहार होता है उसी समय में शब्द में अर्थ का व्यवहार होता है अर्थात् जिस क्षण में किसी शब्द की व्युत्पत्ति का निमित्त कारण संपूर्ण रूप से विद्यमान हो, उसी समय उस शब्द का प्रयोग करना उचित है—यह एवंभूतनय की मान्यता है।

नय से विषयीकृत वस्तु धर्म को अभेदवृत्ति प्राधान्य अथवा भेदोपचार से क्रमशः कहने वाला वाक्य—विकलादेश कहा जाता है। अर्थात् विकलादेश क्रमशः भेदोपचार से अथवा भेद प्राधान्य से अशेष धर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करता है क्योंकि उसको नयाधीनता है। प्रमाणनयतत्त्वा-लोकालंकार में देवेन्द्र सूरि ने कहा है—

“इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा चेति ।”

अर्थात् सप्तभंगी का एक-एक भंग सकलादेश स्वभाव की तरह विकलादेश स्वभाव भी स्वीकृत किया है। प्रमाण के सात भंगों की अपने विषय में विधि और प्रतिषेध की अपेक्षा नय के भी सात भंग होते हैं।<sup>१</sup>

नैगमादि नयों में पहले-पहले नय अधिक विषय वाले हैं और आगे-आगे के नय परिमित विषय वाले हैं। संग्रहनय सत् मात्र को जानता है जबकि नैगमनय सामान्य और विशेष—दोनों को जानता है इसलिये संग्रहनय की अपेक्षा नैगमनय का अधिक विषय है। व्यवहारनय संग्रहनय से जाने हुए पदार्थों को विशेष रूप से जानता है जबकि संग्रह समस्त सामान्य पदार्थों को जानता है इसलिए संग्रहनय का विषय व्यवहारनय की अपेक्षा अधिक है। व्यवहारनय तीनों कालों के पदार्थों को जानता है और ऋजुसूत्रनय से केवल वर्तमान पर्याय का ज्ञान होता है अतः व्यवहारनय का विषय ऋजुसूत्रनय से अधिक है, इसी प्रकार शब्दनय से ऋजुसूत्रनय का, समभिरूढ से शब्दनय का, और एवंभूतनय से समभिरूढनय का विषय अधिक है।

१ नय वाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभंगीमनुव्रजति ।





व्यावहारिकनय की अपेक्षा फाणित, गुड़, मधुर रस वाला कहा गया है और नैश्चयिकनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाला कहा गया है। व्यावहारिकनय की अपेक्षा भ्रमर काला है और नैश्चयिकनय से भ्रमर पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाला है।<sup>१</sup> व्यावहारिकनय से तोते के पंख हरे हैं और नैश्चयिकनय से पांच वर्ण वाले, दो गंध वाले, पांच रस वाले और आठ स्पर्श वाले होते हैं। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा मजीठ लाल है, हल्दी पीली है, खंख श्वेत है, कुष्ठ (पटवास—कपड़े में सुगंध देने वाली पत्ती) सुगंधित है, मुर्दा (मृतक शरीर) दुर्गंधित है, नीम (निम्ब) तिक्त (तीखा) है, सूँठ कटुय (कड़वा) है, कविठ कर्षला है, इमली खट्टी है, खांड मधुर है, वज्र कर्कश (कठोर) है, नवनीत (मक्खन) मृदु (कोमल) है, लोह भारी है, उलुकपत्र (बोरडी का पत्ता) हल्का है, हिम (बर्फ) ठंडा है, अग्निकाय उष्ण है और तेल स्निग्ध (चिकना) है। किंतु नैश्चयिकनय से इन सब में पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श हैं।

व्यावहारिकनय से राख रूक्ष स्पर्श वाली है और नैश्चयिकनय से राख पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाली है।

व्यावहारिकनय लोक-व्यवहार का अनुसरण करता है इसलिए जिस वस्तु का लोक प्रसिद्ध जो वर्ण होता है वह उसी को मानता है। नैश्चयिकनय वस्तु में जितने वर्ण हैं उन सबको मानता है। परमाणु आदि में सब वर्ण, गंध, रस, स्पर्श विद्यमान हैं, इसलिए नैश्चयिकनय इन सबको मानता है। तात्त्विक अर्थ का कथन करने वाले विचार को निश्चयनय कहते हैं—यह सिद्धांतवादी दृष्टिकोण है। लोकप्रसिद्ध अर्थ को मानने वाले विचार को व्यवहारनय कहते हैं।

### विभिन्न दर्शनों के समन्वय का प्रतीक : नयवाद

अन्यवादी परस्पर पक्ष और प्रतिपक्ष भाव रखने के कारण एक-दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण नयों को एक समान देखने वाले आपके शास्त्रों में पक्षपात नहीं है। आपका सिद्धान्त ईर्ष्या से रहित है क्योंकि आप नैगमादि सम्पूर्ण नयों को एक समान देखते हैं। जिस प्रकार बिखरे हुए मोतियों को एक सूत्र में पिरो देने से मोतियों का सुन्दर हार बनकर तैयार हो जाता है। उसी तरह भिन्न-भिन्न नयों को स्याद्वाद रूपी सूत्र में पिरो देने से सम्पूर्ण नय श्रुतप्रमाण कहे जाते हैं। परस्पर विवाद करते हुए वादी लोग किसी मध्यस्थ के द्वारा न्याय किये जाने पर विवाद करना बन्द करके आपस में मिल जाते हैं वैसे ही परस्पर विरुद्ध नय सर्वज्ञ भगवान के शासन की शरण लेकर 'स्यात्' शब्द द्वारा विरोध के शान्त हो जाने पर परस्पर मैत्रीभाव से एकत्र रहने लगते हैं, अतः भगवान के शासन के सर्वनयस्वरूप होने से भगवान का शासन सम्पूर्ण दर्शनों से अविरुद्ध है क्योंकि प्रत्येक दर्शन नयस्वरूप है। हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण नय रूप दर्शनों को मध्यस्थ भाव से देखते हैं अतः ईर्ष्यालु नहीं है। क्योंकि आप एक पक्ष का आग्रह करके दूसरे पक्ष का तिरस्कार नहीं करते हैं। हे भगवन् ! आपने केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को यथार्थ रीति से जान कर—नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया है। नयस्वरूप स्याद्वाद का प्ररूपण करने वाला आपका द्वादशांग प्रवचन किसी के द्वारा भी पराम्भूत नहीं किया जा सकता।

सभी पदार्थ द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य हैं।

१ वावहारियणयस्स कालए भमरे, णेच्छइयणयस्स पंचवण्णे दुगंधे पंचरसे अठुफासे पण्णत्ते।

—भगवती, शतक १८, उद्देशक ६, सूत्र २



केवल द्रव्याधिकनय को मानने वाले अद्वैतवादी, कोई भीमांसक और सांख्यवादी सामान्य को ही सत् (वाच्य) कहते हैं। केवल पर्यायाधिकनय को मानने वाले बौद्ध लोग विशेष को ही सत् मानते हैं। केवल नैगमनय का अनुसरण करने वाले न्याय-वैशेषिक परस्पर मित्र और निरपेक्ष सामान्य और विशेष दोनों को स्वीकार करते हैं। जो एक अंश को लेकर वस्तु के स्वरूप का वर्णन करता है वह वस्तुतः ज्ञाननय है। आचारांग में कहा है कि जिसको सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यग्रूप देखो उसी को संयमरूप देखो और जिसको संयमरूप देखो उसी को सम्यग्रूप देखो।<sup>१</sup> सम्यग् जान कर ही—ग्रहण करने वाले अर्थ में और अग्रहणीय अर्थ में भी होता है। उसे इहलोक और परलोक से सम्बन्धित अर्थ के विषय में यत्न करना चाहिए। इस प्रकार जो सद्व्यवहार के ज्ञान के कारण का उपदेश है—वह प्रस्तावतः ज्ञाननय है। भगवान ने साधुओं को लक्ष्य करके कहा कि 'जो सभी नयों के नाना प्रकार की वक्तव्यताओं को सुनकर सब नयों से विशुद्ध है वही साधु-चारित्र और ज्ञान के विषय में अवस्थित है।'<sup>२</sup>

दृष्टान्त के तौर पर आत्मा के विषय में परस्पर विरोधी तत्त्व मिलते हैं। किसीका कहना है कि आत्मा एक है। किसी का कहना है कि आत्मा अनेक है। एकत्व और अनेकतत्व का परस्पर विरोध है ऐसी दशा में यह वास्तविक है या नहीं और अगर वास्तविक नहीं है तो उसकी संगति कैसे हो सकती है? इस बात की खोज नयवाद ने की और कहा कि व्यक्ति की दृष्टि से आत्मा अनेक है और शुद्ध चैतन्य की दृष्टि से एक। इस प्रकार समन्वय करके नयवाद परस्पर विरोधी मालूम पड़ने वाले वाक्यों में एकवाक्यता सिद्ध कर देता है। इसी प्रकार आत्मा के विषय में नित्यत्व, अनित्यत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व आदि विरोध भी नयवाद द्वारा शान्त किये जा सकते हैं।

नय दृष्टि, विचार सरणि और सापेक्ष अभिप्राय—इन सभी शब्दों का एक अर्थ है। नयों के वर्णन से यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि किसी भी विषय को लेकर उसका विचार अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। विचार सरणियों के अनेक होने पर भी संक्षेप में उन्हें सात भागों में विभक्त किया गया है। इनमें उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्मता है। एवंभूतनय सबसे अधिक सूक्ष्म है। जिस विचार में अर्थ की प्रधानता हो वह अर्थनय और जिसमें शब्द की प्रधानता हो वह शब्दनय है। ऋजुसूत्रनय तक पहले चार अर्थनय हैं और बाकी तीन शब्दनय हैं।

इस प्रकार नयवाद व्यावहारिक और सैद्धान्तिक तुला पर अवस्थित है तथा विभिन्न दर्शनों के समन्वय की अपूर्व कला है।

### परिचय एवं पता

श्रीचन्द्र चोरडिया न्यायतीर्थ

जैनदर्शन में शोधकर्ता, लेश्याकोश, क्रिया कोष आदि के सम्पादक।

जैन फिलोसाफिकल सोसायटी

१६/सी० डॉवर लेन, कलकत्ता २६

- १ जं सम्मं ति पासह तं मोणं ति पासह ।  
जं मोणं ति पासह तं सम्मं ति पासह ।
- २ णायमि गिण्हिअव्वं अगिण्हिअव्वमि अत्थमि ।  
जइ अव्वमेव इइजो, उवएसो सो नओ नाम ।  
सव्वेसि पि नयाणं बहुविह वत्तव्वयं निसामित्ता ।  
तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणटिठओ साहू ।

—आयारो ५/३

—अणुभोगद्वाराहं, उत्तराहं